हिन्दी उपन्यासों में थर्ड जेण्डर विमर्श

डॉ0 रीना सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर
जवाहरलाल नेहरू स्मारक पी0 जी0 कॉलेज
बाराबंकी (उ0प्र0)

मुझे एक टैग के बंधन और गंदगी के खिताब से मुक्त होने दो।
मुझे इस दुनिया का हिस्सा बनने दो, जो दो में बटी है,
जब मैं खुद को देखूँ तो मुझे शर्मिन्दा मत होने दो,
मुझे भी बनने दो दुनिया के लिंग का हिस्सा,
मुझे इस दुनिया में मुक्त होने दो।[1]

निश्चित रूप से अमरिकी कवि शरेन रफेल की ये पँक्तियां उस अधूरी दुनिया की मुक्कमल दास्तान प्रस्तुत करती हैं, जिसकी आज हम चर्चा करेंगे। साहित्याकाश की ओर हम दृष्टि डालें तो हम यह साफ–साफ देख सकते हैं कि वर्तमान दौर पीड़ितों, वंचितों की अस्मिता की खोज का दौर है। जिसका प्रमाण आदिवासी विमर्श, दलित विमर्श, स्त्री विमर्श के रूप में हमारे सामने है। हमारा समाज दो तरह के लोगों को मान्यता देता है स्त्री और पुरूष। समाज में हमारी भागीदारी सुनिश्चित करने का यही मापदंड है, लेकिन इन दो वर्गों के अलावा एक तीसरा वर्ग भी है जिनके बारे में बातचीत तो दूर हम सोचना भी पसंद नहीं करते। हमारी संस्कृति और समाज में तीज त्योहारों के अवसर पर, बालक/बालिका के जन्मोत्सव पर, विवाह आदि शुभ अवसर पर हमारी इनकी मुलाकात होती है। यह वर्ग किन्नर, थर्डजेन्डर, छक्का, ट्रांसजेन्डर आदि कई नामों से जाना जाता है इनमें पुरूष एवं स्त्री दोनों के गुण एक साथ पाये जाते हैं, जो लैंगिक रूप से न नर है न नारी, हम उन्हें हिजड़ा कहते हैं।

हिन्दी साहित्य जगत में स्त्री विमर्श और दलित विमर्श अनेक रूपों एवं आयामों के साथ साहित्य के चर्चा के विषय रहे हैं। कहते हैं कि कलम में बड़ी ताकत होती है, वह बड़े से बड़ा परिवर्तन लाने की क्षमता रखती है, इतिहास में एवं वर्तमान पर दृष्टि डालें तो यह बात अक्षरशः सत्य साबित होती है और इसी का परिणाम रहा है कि सदियों से उपेक्षित दलित एवं स्त्री को साहित्य एवं समाज में एक ऊँचा स्थान प्राप्त हुआ है, किन्तु आज भी एक ऐसा वर्ग है जिसे हम किन्नर कहते हैं, पूर्ण रूप से साहित्य एवं समाज से उपेक्षित ही रहा है। इधर दो दशकों को छोड़कर हम देखें तो इस वर्ग के प्रति साहित्यकारों ने भी कोई महत्वपूर्ण भूमिका नहीं निभाई, समाज में उनका हक दिलाने में।

माथे पर लगी लाल बिन्दी के पीछे के नीले दर्द को हमने महसूस ही नहीं किया, उनकी ताली के पीछे छिपा आक्रोश हमें दिखाई ही नहीं दिया, उनकी भूख मिटाने चंदा मामा को नहीं

बुलाया गया, उनकी पीठ ने पिता की शाबाशी का अनुभव ही नहीं किया। हमारा साहित्य इस बात का गवाह रहा है कि अगर कोई चर्चा या समस्या साहित्य में अपनी जगह बना लेती है तो धीरे–धीरे ही सही पर बदलाव जरूर आता है। समाज में व्याप्त विद्रुपता को देख कर जब कोई साहित्यकार कलम उठाता है तो उसका केवल और केवल एक ही मकसद होता है कि उसके लेखन से समाज उस विद्रुपता की संवेदना को समझे और उसे दूर करने के लिये आगे आये। साहित्य जहां समाज की शोभा एवं उसकी सांस्कृतिक सुंदरता को उभारने का काम करता है वहीं उसका यह भी दायित्व है कि समाज एवं सांस्कृतिक कमियों को भी उजागर करें। निश्चितरूप से साहित्य ने इस दायित्व को समझा और यही वजह है कि किन्नर विमर्श साहित्य की विशिष्ट धारा बनकर उभर रहा है। साहित्यकारों ने अपनी सोच की ऐसी रोशनी उत्पन्न कर दी है जिससे इस तीसरी दुनिया के दर्द को अंधेरे कोने से निकाल कर रोशनी में लाकर खड़ा कर दिया है किन्नरों के जीवन के संघर्श, चुनौतियों उनके विभिन्न मानसिक पहलुओं को बिना किसी शब्दों की कसीदाकारी के हमारे सामने रखा है।

किन्नर होना या ना होना यह किसी के बस की बात नहीं लेकिन हम और हमारा समाज ईश्वर द्वारा दिये गये उस रूप को नकारते हुये सारी जिम्मेदारी उस देह पर डाल देते हैं जिसका जन्म ना पुरूष के रूप में हुआ है न स्त्री के रूप में और यही से शुरू होता है समाज में अपना अस्तित्व तलाशते किन्नर की गाथा, जो मानों चीख चीख कर कहती है इस अधूरेपन में भी हमारी दास्ताँ मुक्कमल है। एक किन्नर को अपने जीवन काल में अनेक विसंगतियों का सामना करना पड़ता है उनके जीवन से जुड़ी विभिन्न चुनौतियों की चर्चा अब साहित्य में प्रारम्भ हो चुकी है। इसमें नीरजा माधव का 'यमदीप', प्रदीप सौरभ की 'तीसरी ताली', चित्रा मुद्गल का 'पोस्ट बॉक्स नं0 203 नाला सोपारा', महेन्द्र भीष्म की 'किन्नर कथा' आदि कई उपन्यासों के नाम लिये जा सकते हैं, जिसमें किन्नरों के भीतर मानवीय पक्ष के साथ–साथ उनके जीवन से जुड़ी तमाम जद्दोजहद का बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से उकेरा गया है। इन साहित्यकारों ने किन्नर जीवन बाहरी या सतही तौर पर नहीं महसूस किया बल्कि गहराई में उतरकर उनकी संवेदना को हम तक पहुँचाया है। इन उपन्यासों और कहानियों की यात्रा के दौरान इनके जीवन की एक गंभीर चुनौती या समस्या कह लीजिए वह है विस्थापन की समस्या। विस्थापन तो हर व्यक्ति के लिए दुखदाई होता है और किन्नरों के जीवन का अनिवार्य कड़वा सच है। लेखिका नीरजा माधव ने 'यमदीप' की भूमिका में लिखा है कि दीपावली की पूर्व संध्या पर हम एक दिये को यम का दिया बनाकर घर से बाहर 'घूर' पर रख देते हैं, वह दीपक 'यमदीप' कहलाता है। वह लिखती हैं – '' नहीं छूटती उसके प्रदीप्त होने पर फुलझड़ियाँ और पटाखे, नहीं होती पूजा अर्चना या चढ़ते थाल पर भोग पर काली रात के विरोध में वह टिमटिमाता रहता है चुपचाप, निःशब्द। सूखता रहता है अंत सरस बूँद– बूँद'' [2] कितनी साम्यता है इस यम के दीपक में और एक किन्नर के जीवन में। एक किन्नर शिशु जिसे परिवार, समाज, शिक्षण संस्थान, कार्यालय कहीं पर स्वीकार नहीं किया जाता है क्या हम उनकी मनोदशा का अंदाजा भी लगा सकते हैं? हमारा समाज या तो जन्मते ही मार डालता है या फिर घर से बहिस्कृत कर देता है। परिवार से बिछड़ने का दंश कितना सालता है, कष्ट देता है यह उनसे अच्छा और बेहतर कौन समझ सकता है।

इस विस्थापन के दर्द की परत– दर–परत खोलता नजर आता है चित्रा मुद्गल के उपन्यास का पात्र बिन्नी उर्फ विनोद जो परिवार से अलग हो कर भी अपनी माँ को एक दिन के लिए भुला नहीं पाता। उपन्यास के माध्यम से लेखिका ने उसकी भावना का प्रकटीकरण किया है – '' मेरी बा, तेरी चिट्ठी मिली। पढ़े बिना मैने सैकड़ों बार उसे चूमा था। पेशाब के बहाने पाखाने में घुसकर, ताकि किसी को मेरी हरकत विचित्र न लगे। कलम की स्याही में बसी हुई है तेरे हांथों से पकने वाली स्वादिश्ट सब्जियों की कल्हार की सीजी गंध। चिट्ठी खोलकर तकलीफ हुई। इतने बड़े लिफाफे में इतनी छोटी सी चिट्ठी। अगली चिट्ठी पाँच–छह पन्ने से कम ना लिखना।'' [3] बिन्नी ने चूँकि प्रारंभिक शिक्षा अपने परिवार के साथ रह कर ही ले लिया था इसलिए वह अपनी भावनाओं से माँ को परिचित करा देता है पर अधिकांशतः किन्नर तो अशिक्षित ही रह जाते हैं, क्योंकि उनको जन्मते ही परिवार से अलग कर दिया जाता है इसलिए हमारे लिये अंदाजा लगाना नामुमकिन होगा कि वह किस दर्द से गुजर रहा है, अधिकांशतः किन्नारों के जीवन की यही कड़वी सच्चाई है। यह विस्थापन का क्रम अंतिम सांस तक चलता है। झूठी शान–शौकत के चक्कर में माता–पिता अपने किन्नर बच्चे को दर–दर की ठोकरें खाने के लिये छोड़ देते हैं, उन्हें किस प्रकार समाज में एक सम्मानपूर्ण जीवन दिया जाय इस बात को सोचने का कश्ट भी नहीं करते। निश्चितरूप से इस तीसरे वर्ग को विस्थापन की नहीं, अपनाने की आवश्यकता है। अपने परिवार से मिलने की आशा इन्हें अन्दर ही अन्दर तोड़ने लगती है। महेन्द्र भीष्म के उपन्यास 'किन्नर कथा' की पात्र तारा यही व्यथा व्यक्त करती है। '' हिजड़ा रूप पा उसकी क्या गलती है? फिर ईश्वर का तमाचा उस पर ही क्यों पड़ा? ईश्वर ने उसके साथ ऐसा क्यों किया? क्यों किया? उसने उसके और उस जैसें अन्य हिजड़ों के साथ? क्यों बनाया उन्हें ईश्वर ने अधूरा और अपमानित रहने के लिये अभिशप्त कर दिया? घर परिवार, समाज से बहिष्कृत, तिरष्कृत और त्रासदी लिए हुए। जब तक की जीवन है त्रासदियाँ उनके साथ है, यही कटु सत्य है।'' [4] तारा की बातें कई सवाल हमारे सामने खड़ा कर देती हैं पर कोई जवाब नहीं है हमारे पास हमने और हमारे समाज ने इन्हें अपमान, अवसाद के चार दीवारी के बीच जीवन जीने के लिये विवश कर दिया है।

अविकसित जननांग वाला बच्चा संसार में मानों एक अभिशाप होता है। हम उसे स्वीकार ही नहीं कर पाते हैं जबकि यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है महिला शरीर में एक्स क्रोमोसोम होता है और पुरूश में एक्स (X) और वाय (Y) दोनों। यदि महिला का एक्स क्रोमोसोम पुरूष के एक्स क्रोमोसोम के संपर्क में आता है तो बालिका, अगर वाय के संपर्क में आता है तो बालक की रचना होती है अगर दोनों (X, Y) क्रोमोसोम के बराबर मात्रा में मिलने की स्थिति में प्राकृतिक विकार आने की आशंका होती है। इस पर किसी का वश नहीं किन्तु सत्य यह है कि हमेशा पुरूष अपनी झूठी शान के लिए या फिर अपनी कमजोरी मानकर इसे छिपाने के लिये, उस किन्नर बच्चे को स्वीकार्य नहीं करता। समाज के इसी मनोवैज्ञानिक पक्षों को महेन्द्र भीष्म ने अपने उपन्यास ''किन्नर कथा'' में उकेरा है।

किसी भी व्यक्ति के विकास में समाज और परिवार की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। परिवार में ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण एवम् विकास होता है या हम यूँ कह सकते

हैं परिवार ही व्यक्ति को मनोवैज्ञानिक सुरक्षा प्रदान करता है लेकिन ये दुखद एवं कड़वा सत्य है कि हम उसी सुरक्षा कवच को उस किन्नर बालक के जीवन से हटा देते हैं। यदि संतान शारीरिक या मानसिक रूप से अपाहिज है तो वह हमें स्वीकार्य है लेकिन यदि संतान पूर्ण रूप से स्वस्थ हो केवल उसमें यौनिक कमी हो तो वह हमें स्वीकार्य नहीं है। 'संझा' कहानी की मुख्य पात्र संझा से उसके पिता कहते हैं कि किस्मत ने तुम्हें एक जरूरी अंग हटाकर पैदा किया है, बेटी, उस पर संझा जो सवाल अपने पिता से करती है वह सवाल निश्चित रूप से सबको झकझोर देता है '' जीवन के लिये तो सबसे जरूरी आंख है। जागी चाचा अंधे पैदा हुये। जरूरी तो हाथ है। बिन्दा बुआ का दाहिना हाथ कोहनी से कटा है। रामाधा भइया तो शुरू से खटिया पर पड़े हैं, रीढ़ की हड्डी बेकार है। विसम्भर तो पागल है, जनम से बिना दिमाग का। क्या..... वो..... वो आंख, कान, हाथ, पाँव, दिमाग से भी बढ़कर होता है?[5]

किसी व्यक्ति के शरीर में किसी एक अंग का न होना उसके अस्तित्व को समाप्त नहीं कर सकता, जिस दिन इस सच्चाई को हम समझ लेंगे उस दिन सारी समस्याएँ खुद–ब–खुद समाप्त हो जायेंगी। परिवार का साथ खड़ा होना यह किसी भी व्यक्ति के लिये बहुत बड़ी ताकत होती है, सन् 2012 में मराठी में एक आत्मकथा प्रकाशित होती है ''मी हिजड़ा, मी लक्ष्मी'' यह थर्ड जेन्डर लक्ष्मी त्रिपाठी की आत्मकथा है। सन् 2015 में यह आत्मकथा हिन्दी में प्रकाशित होती है और हिन्दी जगत को किन्नर विमर्श के लिये एक विस्तृत आधार देती है। किन्नर होने के बावजूद यदि किसी को परिवार का बल मिलता है तो वह क्या–क्या नहीं कर सकता है उसका जीता जागता उदाहरण है लक्ष्मी। जिस समाज में किन्नर को ताली बजाने एवं नाचने गाने तक सीमित रखा जाता है, उसी समाज में वह परिवार के बल पर एक आइकॉन बनकर उभरती है, क्योंकि उसका परिवार उसके पिता उसके साथ मजबूती से खड़े थें इसी का परिणाम था कि लक्ष्मी आत्मसम्मान, आत्मविश्वास के साथ उच्च शिक्षा ग्रहण करती है और अपने समुदाय (LGBT) का प्रतिनिधित्व भी करती है।

संझा के पिता भी अपनी बेटी की सच्चाई समाज से तो छिपाते हैं लेकिन उसे औषधियों का ज्ञान देकर उसमें आत्मविश्वास पैदा कर देते हैं। जिस दिन संझा की सच्चाई समाज के सामने आती है समाज उसके वैद्यकीय गुण को तो नजरअंदाज कर देता है लेकिन उसके उस शारीरिक कमी नहीं और घसीट कर मार मार कर लहूलुहान कर देता है। गांव की प्रतिकूल प्रतिक्रियाओं के बीच संझा अपने अस्मिता के पक्ष में मजबूती से खड़ी होती है और कहती है कि '' न मैं तुम्हारी जैसी मर्द हूँ। न मै तुम्हारी जैसी औरत हूँ। मैं वो हूँ जिसमें पुरूश का पौरूष है और औरत का औरत पन। तुम मुझे मारना तो दूर अब मुझे छू भी नहीं सकते, क्योंकि मैं एक जरूरत बन चुकी हूँ सारे चौगांव ही नहीं, आस–पास के कस्बे, शहर तक एक मैं ही हूँ जो तुम्हारी जिन्दगी बचा सकती हूँ। अपनी औषधियों में अमरित का सिफत मैंने तप करके हासिल किया है। मैं जहां जाऊँगी, वहीं मेरी इज्जत होगी। तुम लोग अपनी सोचो। तो मैं गांव से निकलूँ या तुम खुद बाउदी की गद्दी तक ले चलोगे।'' [6]

संझा का वह अंतिम वाक्य उसके उस ज्ञान और आत्मविश्वास की ओर संकेत करता है

जो उसे उसके पिता से मिला। क्यों वह मजबूती से खड़ी हो पायी उस क्रूर समाज के सामने क्योंकि उसके पिता और पिता का दिया ज्ञान उसके पास है। आखिर क्यों एक व्यक्ति को समाज से बहिष्कृत होना पड़ता है केवल और केवल इसलिये कि वह लिंग दोशी है। क्या केवल एक यही दोश उसके सारे गुणों पर इतना भारी पड़ जाता है कि हम उसकी आशाओं, इच्छाओं, जज्बातों का गला घोंट देते हैं। इस समुदाय के प्रति यह व्यवहार इसलिए होता है क्योंकि हमारा समाज यौन केंद्रित है। उससे परे वह सोच ही नहीं पाता है और जब तक यह सोच हमारे बीच रहेगी, हम इस प्रकार की समस्या से जुझते रहेंगे।

इस समस्या के निवारण का सबसे महत्वपूर्ण शस्त्र हो सकता था या है वह है शिक्षा। पुस्तकों की दुनिया व्यक्ति को बेहतर समझ दे सकती है उसी पुस्तक की दुनिया से इस तीसरी दुनिया के लोगों को वंचित कर दिया जाता है। बेहद अफसोस की बात है कि इस तृतीय लिंग समाज के प्रति हमारी शिक्षा नीतियाँ, आयोग ने भी विशेष कोई पहल नहीं की। संपूर्ण भारत में कितने स्कूल, कॉलेज या यूनिवर्सिटी हैं इनके लिये। जो है भी वह भी अँगुलियों पर गिनने लायक। और यह तब जबकि हर गली, मोहल्ले, चौराहे पर शिक्षण शिक्षण संस्थान कुकुरमुत्ते की तरह उग रहे हैं। वहीं ताज्जुब है कि इस वर्ग के लिये कितने शिक्षण संस्थान हैं। परिणाम यह है कि लगभग 90: हिजड़े अशिक्षित हैं और यह तब है जब हम नारा दे रहे हैं 'पढ़े इंडिया, बढ़े इंडिया'। अशिक्षित होने का ही परिणाम है कि ये बेरोजगार हैं। रोजगार की विकल्प हीनता ही इन्हें परंपरागत पेशे में बंधने को मजबूर करती है। वह मुक्त होना चाहते हैं इस परंपरागत पेशे से वह भगवान राम के उस मिथक को तोड़ना चाहते हैं लेकिन समाज ऐसा करने नहीं देता। 'तीसरी ताली' उपन्यास पेशे में बंधे होने की हिजड़ों की छटपटाहट को विजय द्वारा व्यक्त करता है जो कहता है –'' दुनिया के दंश से अपने आप को बचाने के लिये मैंने लगातार लड़ाई लड़ी और खुद को स्थापित किया। मैं नाचना गाना नहीं, नाम कमाना चाहता था। भगवान राम के उस मिथक को झुठलाना चाहता था जिसके कारण तीसरी योनि के लोग नाचने गाने के लिये अभिशप्त हैं। परिवार और समाज से बेदखल।'' [7]

सिक्के का दूसरा पहलू और भी कड़वा है। शिक्षा के अभाव से न केवल ये आर्थिक असमर्थता का सामना करते हैं बल्कि रोजगार की विकल्पहीनता के कारण कई बार न चाहते हुये भी सेक्स रैकेट का हिस्सा बन जाते हैं। यदि माता–पिता जन्मते ही या 13–14 वर्ष की आयु में ही घर से बहिस्कृत कर देंगे और ऊपर से समाज का भेदभाव, शिक्षा का अभाव इनके पास कोई विकल्प ही नहीं छोड़ते। लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी इस समुदाय की आर्थिक और सामाजिक स्थिति के बारे में लिखती हैं कि '' हिजड़ों के पास बुद्धि नहीं होती? उनके पास प्रतिभा नहीं होती? बल नहीं होता? वह राजनीति में नहीं जा सकते? इन बातों को किन तर्कों के आधार पर तय किया जाय? आपने कलाकारों और प्रतिभावानों को मजबूर कर दिया पचास–पचास रूपये में देह बेचने को, ताली बजाने को''।

इस सवालों के जवाब अब हमें देने होंगे। जरूरत है हमें सोच बदलने की, संवेदनशील होने की। सन् 2014 में भारत के माननीय उच्च न्यायालय द्वारा तृतीय प्रकृति समुदाय को भी

आरक्षण प्रदान कर उन्हें राष्ट्र के मुख्य धारा में शामिल करने की सुन्दर पहल की गयी। बड़ा ही ऐतिहासिक निर्णय है ये। लेकिन समाजिक व्यवस्था और न्याय व्यवस्था दो अलग अलग चीजें हैं कोई भी न्याय व्यवस्था तब ही कारगर होती है जब सामाजिक व्यवस्था उसे स्वीकृत कर ले। बाल विवाह, सती प्रथा जैसे कुप्रथाओं के लिये कानून बनें, समाज ने स्वीकार्य किया और ये प्रथायें समाप्त हो गयी। दहेज प्रथा के लिये भी कानून बने लेकिन सामाजिक व्यवस्था पूरी तरह स्वीकार नहीं करती है, आज भी वह समस्या बरकरार है। कहने का तात्पर्य है कि सर्वोच्च न्यायालय के इस ऐतिहासिक फैसले से समाज में इस समुदाय की दशा पर तब तक कोई खास फर्क नहीं पड़ेगा जब तक की समाज अपने सोच और नजरिये में बदलाव नहीं लायेगा।

निष्कर्षतः अब तक जितने भी उपन्यास, कहानियाँ लिखी गयी हैं सभी में यह आग्रह है कि '' सोच को उभार दो, समझ को संस्कार दो। निःसंदेह सोच में बदलाव एवं किन्नर विमर्श को आगे बढ़ाने में साहित्य ही मील का पत्थर साबित हो सकता है। साहित्यकार जब अपनी लेखनी से इनकी गोपनीय दुनिया का सच समाज के सामने लायेंगे तो निश्चित ही सोच बदलेगी, तब हम शायद इस बात को बेहतर ढंग से समझ सके कि यह वर्ग समाज में केवल नाच गाकर हमारा मनोरंजन करने के लिये पैदा नहीं हुआ है, इन्हें भी हक है गरिमामयी जीवन जीने का।

सन्दर्भ

1. थर्ड जेन्डर विमर्श : सम्पादक शरद सिंह पृष्ठ संख्या 114 प्रकाशक – सामयिक प्रकाशन (संस्करण 2019)।
2. यमदीप : नीरजा माधव सामयिक प्रकाशन 2002।
3. पोस्ट बॉक्स नं0 203 नाला सोपारा : चित्रा मुद्गल, प्रकाशक सामयिक पेपर बॉक्स (संस्करण 2019) पृष्ठ संख्या 20–21।
4. किन्नर कथा : महेन्द्र भीष्म सामयिक पेपर बॉक्स (संस्करण 2019) पृष्ठ संख्या 51।
5. थर्ड जेन्डर : हिन्दी कहानियाँ, सम्पादक : डा0 एम0 फीरोज खान प्रकाशक – अनुसंधान पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, (संस्करण 2018) पृष्ठ संख्या 65।
6. वही पृष्ठ 79।
7. तीसरी ताली : प्रदीप सौरभ, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 195।